इबादत व अख़्लाक़

इमादुल उलमा अल्लामा सै0 मुहम्मद रज़ी साहिब क़िब्ला

इताअत की शिद्दत का नाम इबादत है और इसका तअल्लुक आदमी की पूरी ज़िन्दगी पर पड़ना ज़रूरी है। रही रूहानी इबादतें तो वह इबादत के उस बड़े पैमाने का एक रौशन और ज़रूरी रुख़ हैं लेकिन उनका भी इंसान की सीरत, अख़लाक़ और उसकी अमली ज़िन्दगी से गहरा ताल्लुक़ होता है और मजमुई हैसियत से इबादत को सीरत और अख़लाक़ से किसी तरह भी अलग नहीं किया जा सकता। इबादत के मर्तबे और दर्जे ही के मुताबिक़ इंसानी अख़लाक़ की क़द्रें बना करती हैं इसका लाज़मी नतीजा यह निकलता है कि अख़लाक़ियात की तश्कील में इबादत के तसव्वुर और उसके मेयार को बड़ा दख़ल है और अगर इबादत सही रास्ते पर न होगी तो सीरत व अख़लाक़ की तामीर भी सही तरीक़े पर नहीं हो सकती। इस्लाम ने इसी लिए इंसान को इबादत का सही मतलब बताकर उसके इस पहले फर्ज़ से आगाह कर दिया है कि वह सिर्फ अल्लाह की इबादत करे और किसी सूरत में भी इस काम में उसके ग़ैर को शरीक न करे। इस फर्ज़ में भी इतनी गहराई है कि एक तौहीद परस्त और सच्चे मुसलमान के लिए अल्लाह के अलावा ऐसी कोई इताअत और फरमाँबरदारी मुमकिन नहीं रहती जो अल्लाह की मर्ज़ी के ख़िलाफ हो और जिससे इबादत के इस मेयार में फर्क़ पैदा होता हो जो इस्लाम की बुनियादी तालीम है। यही वह एलान है जिसे हर मुसलमान अपनी हर नमाज़ में करता रहता है। ''ऐ अल्लाह हम बस तेरी ही इबादत करते हैं और तेरी ही मदद चाहते हैं।'' (सूरे हम्द) इस इलाही इबादत का तक़ाज़ा यह है कि मुसलमान अपनी सोच–समझ के तमाम धारों को सारी दुनिया से मोड़कर सिर्फ़ अल्लाह के रास्ते पर लगा दे और तौहीद के मरकज़ से जोड़े रखे। इसी में उसे दुनिया और आख़िरत की हर कामियाबी, फलाह, सरबुलन्दी और न मिटने वाली माद्दी (Material) और अख़लाक़ी ताक़त के सरचश्मे मिल जाएँगे।

लेकिन अगर वह इबादत के इस राज़ को न समझ सका और उसने इसकी मरकज़ी रूहानियत को टुकड़े–टुकड़े करके तौहीद के मक़सद को ठेस लगाई और इस तरह वह्दहू ला शरीक अल्लाह की हाकिमिय्यत और आला हुकूमत में उसके ग़ैर को शरीक बनाया तो फिर इसी के साथ उसका फिक्री इख़्तेलाफ और नज़री अफरातफरी उसकी सीरत, किरदार और अख़लाक़ की तनज़ीम को भी टुकड़े–टुकड़े कर देगी और इंसान उन क़द्रों को हासिल न कर सकेगा जो उसकी ज़िन्दगी का इम्तियाज़ हैं और जिनके लिए उसे पैदा किया गया है। इस्लाम में इबादत की मरकज़िय्यत किसी तरह की तक़सीम और किसी तरह के भी शिर्क को क़बूल नहीं कर सकती वरना इसकी वह बुनियाद ही बाक़ी न रह सकेगी जिस पर उसका फितरी और अख़लाक़ी निज़ाम टिका हुआ है। मैंने अर्ज़ किया है कि वह पूरी नज़रियाती और अमली ज़िन्दगी पर हावी और शामिल है, क्योंकि उसने जहाँ इंसान के

आज़ा व जवारेह के इस इस्तेमाल को इबादत कहा है जो ख़ुदाई मर्ज़ी के मुताबिक़ हों वहा उसने फिक्र व नज़र को भी इबादत क़रार दिया है जो ख़ुदा के मुक़र्रर किये हुए रास्ते पर हो। यह बात सब ही जानते हैं कि इंसानी फिक्र और उसके नफसियात की बनावट इस तरह की है कि वह तरह–तरह के माहोल में ढल सकते हैं। आदमी की सोच का दायरा और उसके सोचने का तरीक़ा आस–पास के हालात से मुतास्सिर हो सकता है और इसी लिए सारी दुनिया के इंसानों को फिक्र के एस धारे पर लाने की कोशिश की जाए तो इसमें कामियाबी हासिल करना आम सतह के इंसानों की ताक़त से बाहर है। उसके लिए अगर यह बात मुमकिन हो सकती है तो सिर्फ इलाही मदरस–ए–फिक्र से, यानि दीन और सिर्फ दीन ही वह ज़रिया है जिसको ख़ित्ता, रंग, नस्ल, ख़ानदान, क़ौम और मुल्क या ज़बान के इख़्तेलाफात अपनी पकड़ में लेकर शिकस्त नहीं दे सकते और यही वह बड़ी ताक़त है जो हर ग़ैर मुअ्तदिल और हर ग़लत ख़याल को शिकस्त दे सकती है।

इस्लामी फिक्र ख़ुद भी इबादत है और उसकी हर अमली शक्ल इबादत है और ''इस्लामी अख़लाक़'' इसी फिक्र की अमली सूरत का नाम है। इस तरह ''इस्लामी अख़लाक़'' का पाया जाना इस्लामी इबादत के ख़याल की तश्कील का एक लाज़मी हिस्सा है यानि अगरचे इबादत का मतलब अपनी जगह पर बहुत ऊँचा है लेकिन सीरत व अख़लाक़ को पूरा किये बिना इसका कोई फाएदा नही बाक़ी रह सकता। और अगर इस्लामी इबादत की क़द्रें मौजूद न हों तो फिर सीरत और किरदार की तश्कील इस्लामी ख़याल के मुताबिक़ मुमकिन नही है।

एक बार क़ुरैश के कुछ बड़े सरदारों ने आँहज़रत (स0) की ख़िदमत में अर्ज़ की कि आईये हम और आप आपस में इस तरह समझौता कर लें कि एक साल तक आप हमारे माबूदों की परस्तिश करें फिर दूसरे साल हम आपके ख़ुदा की इबादत करें इस तरह हम दोनों फरीक़ों को हर एक के दीन और मज़हब और तौर तरीक़े से फायदा हासिल होता रहेगा। आप (स0) ने जवाब दियाः अल्लाह की पनाह यह बात किस तरह मुमकिन हो सकती है कि मैं एक लमहे के लिए भी किसी ग़ैर को अल्लाह का साझी बनाऊँ और अल्लाह को छोड़कर उसकी इबादत करने लगूँ। इसी सिलसिले में सूरे काफिरून का नुज़ूल हुआ था जिसमें अल्लाह फरमाता हैः ऐ रसूल कह दो कि ऐ काफिरों! मैं उन चीज़ों की इबादत नहीं करता हूँ जिनकी तुम इबादत करते हो और न तुम उस अल्लाह की इबादत करते हो जिसकी मैं इबादत करता हूँ।

और आख़िर में इरशाद होता हैः तुम्हारे लिए तुम्हारा रास्ता है और मेरे लिए मेरा दीन है। यानि मैं अपने ही तरीक़े पर जो ख़ुदा का बनाया हुआ है हमेशा चलता रहूँगा और अगर तुम इस ज़िन्दगी के तरीक़े और इबादत के निज़ाम को नहीं मानते और जिसका इन्कार करने पर जमे हुए हो तो जमे रहो। मेरा काम सिर्फ हक़ का पैग़ाम पहुँचा देना है अगर तुम सरकशी करोगे तो इसका नतीजा ख़ुद ही भुगतोगे। इस से साफ तौर पर मालूम हो गया कि इस्लामी नज़रिय–ए–इबादत तौहीद की मरकज़िय्यत में अल्लाह के अलावा किसी की ज़रा सी भी शिरकत

बक़िया.......पेज 14 पर

ख़ून का रिश्ता है और बस। और कोई हक़ या सम्बन्ध की बात नहीं कर सकती।

7– शादी के बाद उसके बेटे उसके बाप की औलाद (नाना की सन्तान) नहीं कहलाए जा सकते जबकि बेटे के बेटे दादा की औलाद कहलाए जाते हैं।

8– मरने में भी दोनों में अन्तर है। मर्द मरने के बाद अमर हो जाता है पर औरत मरने के बाद मिट जाने वाली है।

9– वह ऐसी चीज़ है जिसे किसी दूसरी चीज़ की तरह मर्द इस्तेमाल कर सकता है। उसे कर्ज़े में दे सकता है, उसे किराये पर उठा सकता है, किसी को भेंट में दे सकता है, उसे बेच सकता है, घर से निकाल सकता है, यहाँ तक कि उसे मार भी सकता है।

10– वह सेक्स लूटने का माध्यम है। वह मर्द की मौज–मस्ती के लिए पैदा की गयी है। उससे मज़ा लेने में मर्द किसी भी क़ानून को नहीं मानता।

इस सम्बन्ध में यूरोप और अमरीका वाले लोग नबियों को छोड़कर बीच के सही रास्ते से भटक गए। पच्छिम में औरत सिनेमा, टी0वी0, रेडियो, अख़बार, मैगज़ीन और सैर तफरीह के लिए रह गयी ताकि वह ज़्यादा से ज़्यादा ग्राहक खींच सके क्योंकि जंगली सेक्स के अड्डे माल, पैसे के भट्ठे हैं। **(जारी)**

बक़िया....... इबादत व अख़लाक़

की गुन्जाइश नहीं रखता इस नज़रिय–ए–इबादत का आला नमूना और मिसाल हज़रत ख़ातमुल मुर्सलीन की सीरते पाक थी और चूँकि नज़रिये की अमली शक्ल का नाम ''अख़लाक़'' है इसी लिए आप (स0) अख़लाक़ की उस मंज़िल पर पहुँचे हुए थे जहाँ पर काएनात की कोई दूसरी हस्ती नज़र नहीं आती।

''और तुम्हारे लिए यक़ीनन वह बदला है जो कभी ख़त्म ही न होगा और बेशक तुम्हारे अख़लाक़ ऊँचे हैं।'' (सूरे क़लम आयतः 3–4)

इबादत के नज़रिये की बुलन्दी का अक्स इंसानी अख़लाक़ पर पड़ना ज़रूरी है। नज़रियात ही आदतों ख़ुसूसियतों और अमली ख़ूबियों और अख़लाक़ की पैदाईश का ज़रिया बनते हैं। इसलिए अख़लाक़ को मुकम्मल करने के लिए इबादत के नज़रिये को मुकम्मल करना ज़रूरी है। हम तमाम तौहीद परस्तों के लिए इबादत का नज़रिया और अख़लाक़ की तश्कील के मामले में हज़रत ख़ातमुल मुर्सलीन (स0) से बड़ी कोई मिसाल नहीं है इसलिए हमें चाहिए कि हम आपकी सीरते पाक को हर वक़्त अपने सामने रखें और उसी मुक़द्दस सीरत के मुताबिक़ अपने अख़लाक़ व किरदार की तामीर करें ताकि हम सच्चे मुसलमान बन सकें। क़ुर्आने करीम का इरशाद हैः मुसलमानों! तुम्हारे लिए तो ख़ुद रसूल (स0) की ज़ात में एक अच्छा नमूना मौजूद है मगर हाँ यह उस शख़्स के लिए है जो ख़ुदा और आख़िरत के दिन की उम्मीद रखता हो और बहुत ज़्यादा ख़ुदा का ज़िक्र करता हो। ख़ुदा हम सब को सरवरे दो आलम (स0) के नक़्शेकदम पर चलने और आप (स0) की पाक सीरत पर अमल करने की तौफीक़ अता फरमाए।

□□□